P.G.S NATIONAL COLLEGE OF LAW, MATHURA

Paper- V   Paper Name- Civil Procedure Code   Unit -1

प्र1- प्राइन्याय (पूर्व न्याय) [RES JUDICATAI]

Res का तात्पर्य किसी विषय से है और Judicata का अर्थ ऐसे निर्णय से है जो पहले किया जा चुका है। वर्तमान धारा 11 ऐसे वाद या विवाद्यक का परीक्षण करने से न्यायालय को अवरुद्ध करती हैं जो प्रत्यक्षतः और सारतः विवाद्य विषय के बाबत किसी पूर्ववर्ती वाद में निर्णीत हो चुका है। जैसे यदि B के ऊपर A संविदा-भंग के आधार पर वाद क्षतिपूर्ति का दावा करते हुए संस्थित करता है और दावा खारिज हो जाता है तो A उसी संविदा-भंग के आधार पर B के ऊपर क्षतिपूर्ति का दावा पुनः नहीं कर सकता। संक्षेप में इसी को प्राङ् न्याय कहा जा सकता है।

प्राकृत्यायन विधिशास्त्र के निम्नलिखित सूत्रों पर आधारित है

(1) इन्टेरेस्ट रिपब्लिके एस्टसिट फिनिस लीटियम (Interest republicar est sit finish Litium - इसका अर्थ है मुकदमे वाजी का अन्त अर्थात यह राज्य का कर्तव्य है कि वह देखे कि मुकदमेबाजी को बढ़ाया नहीं दिया जाना चाहिए, अपितु उसे समाप्त किया जाना चाहिए, अर्थात 'मुकदमेबाजी का अन्तA

(2) नेमो डेवेट लिस बेक्सारी प्रोडना बेट इंडेम काजा (Nemo debet lis Vexari prouna etadam causa - इसका अर्थ है 'दुवारा वाद से सुरक्षा * एक ही और उसी हेतु के लिए एक व्यक्ति पर दो मुकदमा नहीं चलाया जाना चाहिए अर्थात् दोबारा बाद से सुरक्षा'।

(3) रेस जुडिकेटा प्रो वेरीटैह सेलीपोटर (Res jadicata pro veritah selipoter)- किसी न्यायिक विनिश्चय को आवश्यक रूप से सही स्वीकार किया जाना चाहिए।

अर्थात पूर्व न्याय या प्राग्यन्याय को सत्य स्वीकार किया जाता है, सही माना जाता हैै।

प्राङ्न्याय की आवश्यक शर्तें–किसी मामले के सम्बन्ध में प्राइन्याय के गठन करने के लिए निम्नलिखित शर्तों का पूरा होना आवश्यक है

1- वाद-पद में विषय- परवर्ती वाद या वाद-पद में प्रत्यक्ष रूप से या सारवान रूप से वाद-बिन्दु में वही विषय होना चाहिए जो कि या तो वास्तविक रूप से या परिलक्षित रूप से पूर्ववर्ती वाद में प्रत्यक्षरूप से या सारवान रूप से था।

उपर्युक्त वर्गीकरण के अनुसार वाद-पद में विषय दो प्रकार के होते हैं :&

1- प्रत्यक्ष रूप से एवं सारवान रूप से]

2- साम्पाश्विक और प्रासंगिक रूप से]

वाद-पद में प्रत्यक्ष रूप एवं सारवान रूप से विषय

एक विषय को प्राङ्ग्ल्याय होने के लिए यह आवश्यक है कि वह पूर्ववर्ती वाद में प्रत्यक्ष रूप से और सारवान रूप से वाद- बिन्दु में रहा होA यदि वह पूर्ववर्ती वाद-बिन्दु में प्रत्यक्ष रूप से या सारवान रूप से नहीं रहा है तो वह पश्चात्वर्ती बाद में प्राइन्याय नहीं होगाA किसी विषय का प्रत्यक्ष रूप से वाद-बिन्दु में होना केवल तब कहा जाता है जब उसका अभिकथन एक पक्षकार के द्वारा किया गया हो और दूसरे पक्षकार के द्वारा या तो अभिव्यक्त रूप से या विवक्षित रूप से स्वीकार किया गया हो या इन्कार किया गया हो।

राजस्थान उच्च न्यायालय ने **सरदार हरनामपुरी बनाम यूनियन आफ इण्डिया** के मामले में यह अभिनिर्धारित किया है कि जहाँ कोई मामला माध्यस्थम द्वारा अधिनिर्णीत किया जा चुका है तो माध्यस्थम द्वारा अधिनिर्णीत किये जाने के पश्चात्]उसी विषय वस्तु के बारे में पृथक् बाद लाना प्राङ्गन्याय के सिद्धान्त द्वारा वर्जित होगा।

परन्तु वहाँ प्राङ्गन्याय का नियम लागू नहीं होगा] जहाँ किसी प्रश्न पर न्यायालय द्वारा विचार नहीं किया गया है जैसा कि उच्चतम न्यायालय ने **नीरज मुजल एवं अन्य बनाम अतुल ग्रोवर** के मामले में यह अभिनिर्धारित किया है कि जहां माध्यस्थम् पंचाट के निष्पादन के बारे में यह प्रश्न हो कि उसका निष्पादन माध्यस्थम् अधिनियम 1940 या माध्यस्थम् अधिनियम 1996 के उपबन्धों के अधीन होगा और इस बारे में न तो सर्वोच्च न्यायालय ने और न ही सम्बन्धित उच्च न्यायालय ने विचार किया हो] वहां इस प्रश्न का निर्धारण कराने के लिये पीड़ित पक्षकार उच्चतम न्यायालय पुनः आ सकता है और उस पर प्राङ्गन्याय का नियम लागू नहीं होगा।

<u>2- साम्पाश्विक और प्रासंगिक रूप से वाद-पद में विशय</u> कोई साम्पाश्विक अथवा प्रासंगिक वाद-विन्दु वह है जो किसी प्रत्यक्ष मौलिक वाद-बिन्दु का गौण भाग है। प्रथम सहायक वादपद है और दूसरा प्रधान बाद पद है। एक वाद-बिन्दु पर निष्कर्ष तथा साक्ष्य के एक अंश के सम्बन्ध में दिये गये विचार में भेद किया जाना चाहिये।

PGS NATIONAL COLLEGE OF LAW

<u>प्रत्यक्ष एवं सारवान रूप होने वाले किसी विषय एवं सम्पाश्विक या प्रासंगिक रूप से होने वाले किसी विशय में अन्तर-</u>प्रत्येक वाद में किसी ऐसे विषय या किन्ही ऐसे विषयों का ग्रस्त होना अवश्यम्भावी है] जिनके सम्बन्ध में वादी द्वारा अनुतोष का दावा किया जाता है। प्रत्येक वह विषय जिसके बारे में बाद में अनुतोष का दावा किया जाय] आवश्यक रूप से प्रत्यक्षतः एवं सारतः बाद-पद में विषय होता है] जबकि कोई ऐसा विषय जिसके बारे में किसी अनुतोष का दावा नहीं किया जाता] किन्तु जिसे इसलिए वाद-पद-ग्रस्त कर लिया जाता है कि न्यायालय उस विषय पर न्याय निर्णय न करने में समर्थ हो सके।

साम्पाश्विक एवं प्रासंगिक रूप से वाद-पद-ग्रस्त विषय का सम्बन्ध सहायक वाद पदों से होता है जबकि प्रत्यक्ष एवं सारभूत वाद-पद प्रधान वाद-पद होते हैं। एक विषय प्रत्यक्षतः एवं सारतः वाद-पद में नहीं हो सकता यदि यह निर्णय सही है कि क्या वह विषय विद्यमान है अथवा नहीं।

2.पक्षकार &पूर्ववर्ती वाद का उन्हीं पक्षकारों के मध्य या ऐसे पक्षकारों के मध्य जिनके अधीन वे या उनमें से कोई दावा करते हैं होना आवश्यक है। पक्षकारों से तात्पर्य उन लोगों का निर्णय के समय 'रिकार्ड' पर हो और एक पक्षकार एक ऐसा व्यक्ति हो सकता है जिसने बाद में दखलन्दाजी किया हो। एक पक्षकार जो पीछे हटता है या जिसका नाम काट दिया जाता हैA वह पक्षकार होना बन्द हो जाता है] अर्थात् वह पक्षकार नहीं रह जाता। एक पक्षकार जो वाद के लम्बित रहते मर जाता है और गलती से उनका नाम रिकार्ड पर रह जाता है। जहाँ पक्षकार भिन्न होते हैं तो वहाँ पर प्राइन्याय नहीं होता] अर्थात् प्राङ्न्याय के लिए आवश्यक है कि दोनों वादों (पूर्ववर्ती एवं परवर्ती) में पक्षकार वही हों। यह शर्त इस सिद्धान्त को मान्यता देती है कि निर्णय और डिक्री केवल पक्षकारों और संसर्गियों को बाध्य करती है। आंग्ल-विधि में संसर्गो का तात्पर्य ऐसे व्यक्ति से है जो किसी पक्षकार के अधीन दावा करता है। जब परवर्ती बाद में पक्षकार पूर्ववर्ती वाद के पक्षकारों से भिन्न हों तो वहाँ प्राङ्न्याय नहीं होता।

3- **<u>उसी स्वत्व ;हकद्ध के अधीन</u>** प्राङ्न्याय की यह शर्त इस बात की अपेक्षा करती है कि परवर्ती बाद में पक्षकारों ने उसी हक के अधीन मुकदमेबाजी किया हो] जैसा कि पहले बाद में रहा हो। उसी हक का तात्पर्य है उसी हैसियत से। एक हैसियत से वाद करने वाले व्यक्ति के विरुद्ध एक अधिमत] जब वह दूसरे भिन्न हैसियत से वाद करता है] तो उसे नहीं रोकेगा और वास्तव में कानून की दृष्टि से वह भिन्न व्यक्ति है।

4- **<u>सक्षम न्यायालय-</u>** सर्वप्रथम मुख्य न्यायाधीश सर बारनेस पीकॉक ने **इडन बनाम बेचन** के मुकदमे में यह धारणा व्यक्ति की कि पूर्ववर्ती न्यायालय को ऐसा न्यायालय होना चाहिए जिसके पास पश्चात्वर्ती वाद के विषय में क्षेत्राधिकार होना चाहिए। दूसरे शब्दों में] उसे समवर्ती क्षेत्राधिकार वाला न्यायालय होना चाहिए। किन्तु इस विचार से भिन्न विचार **रनबहादुर सिंह बनाम लच्छू कुंवर** के मुकदमे में प्रकट किया गया। इस मतवैभिन्य को 1882 की संहिता की धारा 13 के द्वारा विधान-मण्डल द्वारा निश्चित किया गया कि पूर्ववर्ती वाद का विचारण करने वाले न्यायालय को ऐसे पश्चात्वर्ती वाद या ऐसे वाद-बिन्दु जो बाद में उठाया गया है] का विचारण करने में सक्षम होना चाहिए। **रनबहादुर सिंह बनाम लच्छू कुंवर** में व्यक्त किये गये भिन्न विचार को अपील में प्रिवी काउन्सिल ने उलट दिया।

बिना क्षेत्राधिकार के न्यायालय का निर्णय- किसी ऐसे न्यायालय द्वारा दिया गया कोई निर्णय] जो उसे देने के लिए सक्षम न हो] प्राङ्न्याय का प्रभाव नहीं रख सकता।

बिना क्षमा की प्रार्थना के पुनर्विलोकन का आवेदन यदि खारिज कर दिया गया तो प्राइन्याय लागू होता है& जहाँ पर विलम्ब को क्षमा के लिए प्रार्थनापत्र के बिना कोई पुनर्विलोकन का प्रार्थनापत्र खारिज कर दिया गया तो वह आदेश अन्तिम और बन्धनकारी हो जाता है। यह आदेश पुनर्विलोकन के लिए परवर्ती प्रार्थनापत्र और विलम्ब की क्षमा के लिए प्रार्थनापत्र पर प्राइन्याय के रूप में लागू होगा।

5- **<u>सुना गया और अन्तिम रूप से निर्णीत-</u>** यह शर्त यह निर्धारित करती है कि प्राइन्याय का गठन करने के लिए किसी विषय का पहले बाद में वाद-पद के प्रत्यक्ष रूप से सारथान रूप से होना ही पर्याप्त नहीं है अपितु यह भी अपेक्षित है कि यह विषय सुना जाकर स्पष्ट रूप से विनिश्चित कर दिया गया हो। दूसरे शब्दों में ऐसा दिखाई देना चाहिए कि न्यायालय ने अपने न्यायिक मस्तिष्क का प्रयोग करके किसी तथ्य या विधि के वाद-बिन्दु के किसी विनिश्चय पर एक निश्चित निष्कर्ष दिया हो] जिसके सम्बन्ध में ऐसा विनिश्चय वाद के निश्चय के लिए आवश्यक था।

PGS NATIONAL COLLEGE OF LAW

प्र2. दीवानी (सिविल) प्रकाति के वाद की व्याख्या कीजिए।

Explain the expression 'suit of civil nature.'

उ- सिविल प्रकृति के वादों की व्यवस्था धारा 9 में दी गई हैA जो इस प्रकार है

"जब तक कि वर्जित न हो] न्यायालय सभी सिविल वादों का विचारण करेंगे- न्यायालयों को ¼इसमें अन्तर्विष्ट उपबन्धों के अधीन रहते हुए½ उन वादों के सिवाय] जिनका उनके द्वारा संज्ञान अभिव्यक्त या विवक्षित रूप से वर्जित है] सिविल प्रकृति के सभी वादों के विचारण की अधिकारिता होगी।

स्पष्टीकरण-1- वह वाद] जिसमें सम्पत्ति&सम्बन्धी या पद सम्बन्धी अधिकार प्रतिवादित है इस बात के होते हुए भी कि ऐसा अधिकार धार्मिक कृत्यों या कर्मो सम्बन्धी प्रश्नों के विनिश्चय पर पूर्ण रूप से अवलम्बित है] सिविल प्रकृति का वाद है।

स्पष्टीकरण-2- इस धारा के प्रयोजनों के लिए] यह बात तात्विक नहीं है कि स्पष्टीकरण 1 में निर्दिष्ट पद के लिए कोई फीस है या नहीं अथवा ऐसा पद किसी विशिष्ट स्थान से जुड़ा है या नहींA

इस धारा में यह वर्णित किया गया है कि किस प्रकृति के वादों को देखने की अधिकारिता न्यायालय रखता है। इस धारा के प्रावधानों को तब लागू माना जाएगा जब दो शर्तें पूरी हों

1- वाद एक सिविल प्रकृति का हो। प्राक्रान्तर से यह कहा जा सकता है कि न्यायालय ऐसे वाद का विचारण नहीं करेगा जो सिविल प्रकृति का न हो।

2- किन्हीं विशेष मामलों के लिए न्यायाधिकरण स्थापित करके सिविल न्यायालय का क्षेत्राधिकार वर्जित न कर दिया गया हो। सिविल न्यायालय का क्षेत्राधिकार या अधिकारिता वहाँ वर्जित होगी जब कोई अधिनियम या सहकारी समिति अधिनियम के अधीन दिए गए पंचनिर्णय। उत्तर प्रदेश शहरी क्षेत्र जमींदारी विनाश और भूमि व्यवस्था अधिनियम 1956 की धारा 82 सपठित उत्तर प्रदेश जमींदारी विनाश और भूमि व्यवस्था अधिनियम 1950 की धारा 331 को देखते हुए भूमि-भवन से सम्बन्धित भूमिधारी सदन की बाबत वाद राजस्व द्वारा संज्ञेय होता है न कि इस संहिता की धारा 9 के अधीन सिविल न्यायालय द्वारा।

<u>निम्नलिखित वाद सिविल प्रकृति के है&</u>

<u>1- सम्पत्ति का अधिकार या पद का अधिकार</u>& सम्पत्ति^ शब्द से प्रत्येक प्रकार की वस्तु जो एक व्यक्ति के द्वारा स्वामित्व का विषय बन सकती है] इंगित हैA स्वामित्व की गई वस्तु मूर्त हो सकती है चाहे वह चल हो या अचल] अथवा अमूर्त हो सकती है जैसे पेटेण्ट] कापीराइट] ट्रेडमार्क] मताधिकार] मछली मारने का अधिकार] बाजार का अधिकार आदि। परन्तु जहाँ वादी का सम्पत्ति में कोई हक न हो और वह केवल कुछ कर्तव्यों के पालन हेतु दावा करता है] जैसे कि किसी मन्दिर का संयुक्त न्यासधारी] मन्दिर के प्रबन्ध और अधीक्षण का उपयोग करने के लिए दावा करता है वहाँ सिविल न्यायालय में वाद नहीं लाया जा सकता है।

<u>2- मन्दिर एवं अन्य धार्मिक सम्पत्ति के सम्बन्ध</u>& मूर्तियों को भी सम्पत्ति के रूप में ग्रहण किया गया है। किसी मन्दिर के धार्मिक चिन्हों को नष्ट करना और उसमें परिवर्तन करना भी सम्पत्ति में दखलन्दाजी करना है और उनके सम्बन्ध में एक सिविल न्यायालय में वाद लाया सकता है। उसी प्रकार उस भूमि के सम्बन्ध में जिस पर मठ है अन्य भूमि के कब्जे और पाण्डुलिपियों की वापसी अथवा प्रधान की गई सम्पत्ति के विक्रय एवं बन्धनामा के सम्बन्ध में वाद लाया जा सकता है।

<u>3- सिविल अपकार की हानिपूर्ति और संविदा-भंग के लिए वाद-</u> सिविल अपकार अथवा दृष्कृति] वैयक्तिक अधिकारों का हनन है। सिविल अपकार की हानिपूर्ति के लिए बाद लाया जा सकता है] यद्यपि प्रथमतः आपराधिक अभियोजन किया जा चुका है।इस प्रकार दुष्कृति के विभिन्न प्रकारों] जैसे अमलेख अथवा अपवचन अथवा विद्वेषमूलक अभियोज के लिए अथवा अनुचित बन्दीकरण के लिए अथवा अन्य प्रकार दुष्कृति के लिए वाद सिविल के होते है।

<u>4- विनिर्दिष्ट अनुतोष के अधिकार से सम्बन्धित वाद-</u>जैसा कि एक घोषणा अथवा निषेधाज्ञा अथवा एक संविदा के विनिर्दिष्ट पालन के अधिकार से सम्बन्

<u>5- सामान्य विधि-सम्बन्धी अधिकार</u>& जैसे मताधिकार सम्बन्धी अधिकार] किसी लोक राजमार्ग के उपयोग करने का अधिकार अथवा पशु का वध करने का अधिकार आदि सिविल अधिकार है।

<u>6- पूजन के अधिकार से सम्बन्धित वाद-</u>

<u>7- धार्मिक या अन्य जुलूस से सम्बन्धित वाद-</u> लोगों के साधारण प्रयोग में दखलंदाजी न करते हुए और शान्तिभंग या मार्ग की अड़चनों को रोकने के लिए एक मजिस्ट्रेट द्वारा दिए गये निर्देश की शर्तों के साथ] सार्वजनिक मार्गों से होकर गुजरने वाले जुलूसों के सम्बन्ध में वाद।

<u>8- मुर्दे गाड़ने के अधिकार से सम्बन्धित वाद-</u>

PGS NATIONAL COLLEGE OF LAW

9- किसी पदधारी के रूप में निर्वाचित किसी व्यक्ति के अधिकार से सम्बन्धित वाद

10- विवाह-विच्छेद या दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन के लिए वाद

11- लेख के लिए लेखा के आधार पर याद

12- साझेदारी के लिए वाद

13- पद तथा धार्मिक पद से आबद्ध फीस के लिए बाद-

14- **<u>जाति अथवा जाति की सम्पत्ति से निष्कासित किये जाने से सम्बन्धित वाद-</u>** जहाँ पर एक बाद में मुख्य रूप से जाति-सम्पत्ति से सम्बन्धित प्रश्न है] उसके प्रत्यावर्तन के लिए सिविल वाद होगा और जहाँ पर एक व्यक्ति अपनी जाति के द्वारा बहिष्कृत कर दिया गया है जिसके कारण उसकी हैसियत] चरित्र अथवा ख्याति प्रभावित होती है और इस प्रकार उसके सिविल अधिकारों का अतिलंघन होता है तो जाति से दोषपूर्ण निष्कासन को रद्द करने के लिए बाद किया जायेगा।

15- **<u>विधान-मण्डल के अधिनियमों की मान्यता से सम्बन्धित वाद</u>**

<u>16. भरण-पोषण के लिए वाद।</u>

<u>17. किसी नोकर द्वारा अपने मालिक के द्वारा असद्द्भावपूर्वक स्थानान्तरण के विरूध्द वाद</u>

<u>18. भूमि के विक्रय विलेख की शुध्दता के लिए वाद</u>

कर्नाटक उच्च न्यायालय ने **कृष्णा बनाम केदारनाथ एवं अन्य** के मामले में यह अभिनिर्धारित किया है कि ऋण वसूली अधिकरण द्वारा विचारणीय मामले में यद्यपि सिविल न्यायालय को अधिकारिता नहीं होती] परन्तु सिविल अधिकारों की प्रकृति की सम्पत्तियों के विभाजन के दावों या अधिकारों से सम्बन्धित मामलों में उसे अधिकारिता प्राप्त होती है। संयुक्त परिवार के विभाजन के लिये बाद जिसमें कि बैंक के पास बन्धक सम्पत्तियाँ शामिल हैं] के विषय में सिविल न्यायालय की अधिकारिता वर्जित नहीं है।

<u>अभिव्यक्त या विवक्षित रूप से वर्जित किया गया वाद &</u> सिविल न्यायालय का क्षेत्राधिकार वर्जित है जब कोई अधिनियम किसी वाद का संज्ञान स्पष्ट रूप से वर्जित करता है] जैसे संरक्षक और प्रतिपाल्य अधिनियम या सहकारी समिति के अधिनियम के अधीन किये गये पंच निर्णयA विवक्षित रूप से वर्जित वादों में ऐसे बाद सम्मिलित हैं जो लोक-नीति के आधार पर वर्जित हैं^ जैसे जानबूझकर किसी वेश्या को दिये गये निवासस्थान का किराया वसूल करने के लिए वाद।

<u>निम्नलिखित वाद सिविल प्रकार के नहीं हैं :</u>

1- ऐसे बाद जिनमें प्रधान रूप से जाति सम्बन्धी प्रश्न अन्तर्ग्रस्त हों। एक बाद में जहाँ पर प्रधान प्रश्न जाति से सम्बन्धित हो तो वह वाद सिविल प्रकृति का नहीं हैa]

2- विशुद्ध रूप से धार्मिक अधिकारों अथवा अनुष्ठानों से सम्बन्धित वाद

3- केवल गरिमा या सम्मान को बनाये रखने के लिए वाद]

4- करार या चिरभोगाधिकार पर आधारित न होने वाली स्वैच्छिक देनगी के लिए वाद]

5- किसी अधिनियम द्वारा अभिव्यक्त रूप से वर्जित वाद]

6- राजनैतिक प्रश्नों से सम्बन्धित वाद]

7- लोक-नीति के विरुद्ध वादA

प्र. डिक्री की परिभाषा दीजिए। डिक्री के आवष्यक तत्व क्या है?विभिन्न प्रकार की डिक्री की विवेचना कीजिए?

उ. डिक्री; आज्ञप्तिद्ध. डिक्री की परिभाषा सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 2(2) में परिभाषित किया गया है। डिक्रो का तात्पर्य न्याय& निर्णयन की वह औपचारिक अभिव्यक्ति है जो कि] जहाँ तक इस अभिव्यक्ति को करने वाले न्यायालय का सम्बन्ध है। विवादास्पद वाद से सम्बन्धित समस्त अथवा किसी एक के विषय के सम्बन्ध में पक्षकारों के अधिकारों को निश्चायक रूप से निर्धारित करती है और यह या तो प्रारम्भिक हो सकेगी अथवा अन्तिम । यह वाद-पत्र की अस्वीकृति और धारा 144 के अन्तर्गत किसी प्रश्न के विनिश्चय को समाविष्ट करती हुई समझी जायगी किन्तु यह निम्नलिखित को समाविष्ट नहीं करेगी

PGS NATIONAL COLLEGE OF LAW

(अ)& कोई न्याय&निर्णयन] जिसको अपील ऐसे हो सकती है जैसे एक आदेश की अपील अथवा

(ब) चूक के लिये खारिज करने का कोई आदेश।

<u>डिक्री के आवश्यक तत्व</u>

1- न्याय निर्णयन

2- न्याय निर्णयन की औपचारिक अभिव्यक्ति

3- न्याय निर्णयन की औपचारिक अभिव्यक्ति किसी वाद में,

4. न्याय निर्णयन, वाद में विवादग्रस्त सभी या किन्हीं वस्तुओं के संबंध में पक्षकारों के अधिकारों को निर्धारित करने मेंं किया गया हो,

1- **न्याय-निर्णयन** (आज्ञप्ति) डिक्री के लिए प्रथम आवश्यक तत्व है कि वह एक न्याय निर्णयन हो अर्थात् विवादग्रस्त विषय के बारे में एक न्यायिक निष्कर्ष हो। एक अधिकारी द्वारा पारित आदेश जो न्यायालय न होA वह डिक्री नहीं है यह दो प्रकार का हो सकता है (1) (आज्ञप्ति) डिक्री और (2) आदेश

2- न्याय निर्णयन की औपचारिक अभिव्यक्ति-

निर्णयन

डिक्री (आज्ञाप्ति) आदेश

अपील योग्य अपील योग्य न हा

इस पदावलों का तात्पर्य है कि प्रारूप की सभी शर्तों का पालन किया गया हो। बाद पत्र में औपचारिक घोषणा के रूप में दावा किये गये अनुतोषों में से किसी को स्वीकृत करता है या अस्वीकृत न्याय-निर्णयन की औपचारिक अभिव्यक्ति पदावली के अन्तर्गत अन्तर्वती आदेश जो कि बाद के विनिश्चय के लिए अपर्याप्त होते हैं नहीं आते हैं। दूसरे शब्दों में यह अब भलीभांति निश्चित हो चुका है कि कोई चीज तब तक डिक्री नहीं हो सकती जब तक कि यह औपचारिक रूप से न बनाई गई हो इस प्रकार यदि डिक्रो समुचित ढंग से नहीं बनी है तो उस निर्णय से अपील नहीं हो सकती है। निर्णय को शर्तों। के अनुसार ही बनाई डिक्री जानी चाहिये किसी निर्णय के एक आदेश जैसे वर्णन मात्र से वह एक डिक्री होने हेतु आदेश नहीं हो सकता। डिक्री का अर्थ न्याय निर्णयन की अभिव्यक्ति है। वाद या आवेदन या तो स्वीकृत किया जाता है. अथवा अस्वीकृत् उसमें कोई अनुतोष या तो दिया जाता है अथवा इन्कार किया जाता है। दोनों स्थितियों में वह डिक्री है।

3- **औपचारिक अभिव्यक्ति किसी बाद में हो** &वह न्याय निर्णयन न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत बाद में दिया जाना चाहिये। जब तक कोई बाद न हो तब तक कोई डिक्री नहीं हो सकती। डिक्री वाद का तार्किक निष्कर्ष है और वह अपने साथ मुकदमेबाजों का परिणाम वहन करती है। न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत प्रत्येक प्रार्थनापत्र पर पारित आदेश डिक्री नहीं हो सकता है।

प्रत्येक वाद का प्रारम्भ एक बाद पत्र द्वारा होता है और जब तक कोई सिविल वाद नहीं होता तो डिक्री नहीं हो सकती। इस प्रकार वाद करने के लिए अकिचन के प्रार्थना पत्र की अस्वीकृति एक ढिक्रो नहीं है क्योंकि जब तक वह प्रार्थना पत्र स्वीकार नहीं हो जाता कोई वाद-पत्र नहीं समझा जाता इस प्रकार यह एक वाद में निर्णय नहीं समझा जाता है।

4-**विवादग्रस्त सभी या किन्हीं वस्तुओं के सम्बन्ध में पक्षकारों के अधिकारों का निर्धारण&** पक्षकारों के अधिकार का तात्पर्य प्रक्रिया सम्बन्धी अधिकारों से नहीं बल्कि पक्षकारों के मौलिक अधिकारों से हैA जैसे क्षेत्राधिकारA हैसियत मियाद वादों को रचना आदि। वह न्याय निर्णयन वाद में विवादित समस्त अथवा किसी एक विषय के सम्बन्ध में पक्षकारों के अधिकारों का निर्धारण करने में आवश्यक रूप से दिया गया हो। अभियोजन न करने के आधार पर निष्पादन के मुकदमे को खारिज करने का आदेश निष्पादन- याचिका में संशोधन का आदेश अकिंचन के रूप में वाद दायर करने की छूट न देने का आदेश वाद-वस्तु में अपने हक के आधार पर बाद में एक पक्ष के रूप में सम्मिलित किये जाने के लिए एक व्यक्ति द्वारा किये गये प्रार्थनापत्र पर निर्णय मध्यवर्ती लाभ के निर्धारण के निर्देश करने का आदेश आदि डिक्री नहीं है क्योंकि वे बाद में विवादित किसी विषय से सम्बन्धित पक्षकारों के अधिकारों का निर्धारण नहीं करते। पक्षकारों का अर्थ वाद के पक्षकारों से है। किसी तीसरे व्यक्ति अर्थात् अन्यजन के पक्षकार बनने प्रार्थना पत्र पर पारित आदेश एक डिक्री नहीं है।

PGS NATIONAL COLLEGE OF LAW

5- निश्चायक निर्धारण& ऐसे न्याय निर्णयन को निश्चायक होना आवश्यक है। अर्थात् निर्णय देने वाले न्यायालय का निर्णय पूर्ण एवं अन्तिम होना चाहिये। बाद में जिन प्रश्नों पर निर्णय के लिए पक्षकारों ने इच्छा व्यक्त की है। गुण-दोषों के आधार पर उन प्रश्नों का सारवान निर्णय अन्तिम एवं निश्चायक होता है और ऐसा निर्णय आज्ञति होता है।

निष्पादन की कार्यवाहियाँ & आज्ञप्ति या डिक्री शब्द की परिभाषा के अन्तर्गत किसी ऐसे प्रश्न का निर्धारण या तय किया जाना सम्मिलित नहीं है जिसका कि सम्बन्ध डिक्रियों के निष्पादन से है अतः धारा 47 के अन्तर्गत प्रश्न का निर्धारण डिक्री के तुल्य नहीं है।

डिक्री के प्रकार-संहिता निम्नलिखित प्रकार की डिक्रियों की व्यवस्था करती है

1- प्रारम्भिक डिक्री

2- अन्तिम डिक्री

3- अंशत: प्रारम्भिक एवं अंशत: अन्तिम डिक्री।

4- वादपत्र को खारिज करने का आदेश एवं

5- धारा 144 के अन्तर्गत किसी प्रश्न का विनिश्चय

1- प्रारम्भिक डिक्री-जहाँ कोई न्याय निर्णयन वाद में विवादित विषयों में से सब या किसी एक के सम्बन्ध में पक्षकारों के अधिकारों का निर्धारण करता है। किन्तु वाद का पूर्ण निपटारा नहीं करताA वहाँ वह एक प्रारम्भिक डिक्री होगो किन्तु जहाँ यह (न्याय निर्णयन) बाद का पूर्ण रूप से निपटारा करता है। अन्तिम डिक्री होती है। प्रारम्भिक डिक्री उन मामलों में पारित की जाती है जिसमें कि न्यायालय को प्रथमतः पक्षकारों के अधिकारों पर न्याय निर्णयन करना होता है और उसके बाद उसको अपने हाथों को तब तक कुछ समय के लिए रोकना पड़ता है जब तक कि वह इस स्थिति में नहीं हो जाता कि वह वाद में अन्तिम डिक्री पारित करे।

38- अ एक दस्तावेज को मंसूखी के लिए ब पर वाद दाखिल करता है और उस बाद में एक डिक्री पारित हो जाती है तो यह अन्तिम क्योंकि बाद का पूर्ण निपटारा हो जाता है।

2- अन्तिम डिक्री-एक डिक्री दो प्रकार से अन्तिम हो सकती है:

1- बिना कोई अपील दाखिल किए ही अपील का समय समाप्त हो जाय अथवा उस विषय का विनिश्चय उच्चतम न्यायालय को डिक्री के द्वारा हो गया हो चुका है।

2- जब वह डिक्री जहाँ तक उसे पारित करने वाले न्यायालय का सम्बन्ध है। बाद का पूर्ण रूप निपटारा करती है। यहाँ दूसरे तात्पर्य में ही अन्तिम डिकी शब्द का प्रयोग हुआ है। अत: एक डिक्री का अपील योग्य से होना अन्तिम डिक्की के स्वभाव को नहीं प्रभावित करेगा। कोई डिक्री प्रारम्भिक है या अन्तिम इस सम्बन्ध में **रचकोंडा वेंकटराव एवं अन्य बनाम आर॰ सत्याबाई (मृत) मार्फत विधिक प्रतिनिधि एवं एक अन्य** 7 का वाद एक उपयुक्त उदाहरण है

3- आंशिक प्रारम्भिक एवं आंशिक अन्तिम डिक्री - एक डिक्री आंशिक प्रारम्भिक एवं आंशिक अन्तिम हो सकती है। इस प्रकार जहाँ न्यायालय अचल सम्पत्ति के साथ मध्यवर्ती लाभों के एक बाद में

अ) सम्पत्ति के कब्जे की डिक्री देता है और

ब) मध्यवर्ती लाभों में जाँच का निर्देश करता है] उसमें भागत: (अ) अन्तिम डिक्री और भागत: (ब) प्रारम्भिक डिक्री है।

4- वाद-पत्र को खारिज करने का आदेश- एक बाद पत्र को खारिज करने का आदेश बादी को उस बाद हेतु पर एक नये बाद पत्र को प्रस्तुत करने से वंचित नहीं करता। इस प्रकार को आदेश यादों के अधिकारों को नकारात्मक नहीं करता जैसे कि वाद के खारिज होने के मामले में यह धारा विशेष रूप से प्राविधान करती है कि वाद-पत्र को खारिज करने का आदेश एक डिक्री समझा जायेगा। दो वाद- हेतुओं के जोड़ने की छूट की अस्वीकृति का एक आदेश और उस बाद पत्र को दो भिन्न-भिन्न मुकदमों को दाखिल करने के निर्देशन के साथ वापस करना मुख्यतया एक वाद-पत्र को खारिज करने का एक आदेश है और यह डिक्री है। एक डिक्री होने के लिए] बाद पत्र को खारिज होना आदेश 7 नियम 11 में उपबन्धित मामलों तक ही सीमित नहीं है। फिर भी इतना आवश्यक है कि वह खारिज होना संहिता द्वारा अधिकृत हो। यदि यह संहिता के किसी उपबन्ध द्वारा अधिकृत नहीं है तो खारिज होने का आदेश डिक्की नहीं माना जा सकता।

PGS NATIONAL COLLEGE OF LAW

P.G.S NATIONAL COLLEGE OF LAW, MATHURA

Paper-V   Paper Name- Civil Procedure Code   Unit -1

निष्पादन के सामान्य ढंग

ऐसी शर्तो और मर्यादाओं के अधीन रहते हुए जैसी कि विहित का जाये न्यायालय विचारों के आवेदन पर आदेश दे सकेगा कि निम्नलिखित में से किसी ढंग से डिक्री का निष्पादन किया जाए

1. किसी सम्पत्ति के परिदान द्वारा
2. गिरफ्तारी और कारागार में निरोध द्वारा
3. किसी सम्पत्ति की कुर्की के द्वारा
4. किसी सम्पत्ति के विक्रय के द्वारा
5. प्रापक या आदाता की नियुक्ति द्वारा 6- ऐसी अन्य रीति से जैसा कि अनुतोष के स्वरूप से अपेक्षित हो (धारा 51)

निर्णीतऋणी के विरुद्ध निष्पादित की जाने वाली डिक्री के सम्बन्ध में उसके मर जाने के बाद उसका वैध प्रतिनिधि उत्तरदायी होगा और उसके विरुद्ध डिक्री का निष्पादन होगा मानो वह डिक्री उसके विरुद्ध हो पारित की गई है] ¼धारा 52½ हिन्दू-विधि के अनुसार ऋण चुकाने के लिए पैतृक सम्पत्ति दायित्वाधीन होती है(धारा 53)

विभिन्न डिक्रियों के निष्पादन का ढंग निम्नलिखित तालिका से समझा जा सकता है

डिक्री	ढंग
1. धन के संदाय की डिक्री	क) सिविल कारागार में निरोध या ख) सम्पत्ति की कुर्की और विक्रय या ग) दोनों रीतियों से
2. जंगम (चल) सम्पत्ति के लिए डिक्री	क) अभिग्रहण और परिदान या ख) सिविल कारागार में निरोध या ग) सम्पत्ति की कुर्की या घ) दोनों रीतियों (क) व (ख) से ङ) तीन माह बाद विक्रय द्वारा
3. संविदा के विनिर्दिष्ट पालन के लिए डिक्री	क) सिविल कारागार में निरोध द्वारा या ख) कुर्की द्वारा या ग) दोनों रीतियों से
4- व्यादेश के लिए डिक्री	दोनों रीतियों से
5. दामत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन के लिए डिंक्री	सम्पत्ति की कुर्की द्वारा
6. दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन के लिए डिक्री पाने के विरूद्ध	क) कालिक संदाय ख) बताए गए धन की वसूली "धन के संदाय की दिक्री की तरह-

PGS NATIONAL COLLEGE OF LAW